भगती उपजी भुड़कुड़ा : 'राजमहल' पर संत

डॉ. उदय प्रताप सिंह
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा गाँव भुड़कुड़ा- संतों-फकीरों और भक्तों की तपस्थली, प्रभूत भक्ति साहित्य एवं अध्यात्म का लोकपावन तीर्थ। भेड़ों और कुंडों (मिट्टी से बने बर्तन) की बहुलता से नाम पड़ा भुड़कुड़ा । अध्यात्म चिंतकों ने इसे 'भोर का कुआँ' कहा, प्रत्यूष काल की रहस्यमय रश्मियों से जोड़ा अर्थात् तपसाधना और अध्यात्म का केन्द्र कहा। चुम्बक का सहज गुणचुम्बक को पकड़ना होता है।आधुनिक विचारकोंमें सर्वप्रथम इसे रजनीश ने अनुभव किया। भुड़कुड़ा, संतों की 'संध्याभाषा' में उछला एक अटपटा सा नाम है; पर इस अटपटेपन में भी परमपुरुष की झिलमिल ज्योति संतों को दिख गई थी। रजनीश के अविकल व्याख्यानों के आधार पर पाँच पुस्तकें बन गईं-झरत दसहुँ दिसि मोती-(बूला), गुरु परताप साधु की संगति (गुलाल), काहे होत अधीर, सपना यह संसारऔर अजहूँ चेत गँवार(पल्टूदास)। चार सौ वर्ष पूर्व अकस्मात् यहाँ संतों का हृदय उजास से भर उठा था, अभ्यंतर का बिम्ब, प्रतिबिम्ब बनकर दिखने लगा था। भक्ति की समचित्तता, संतों के पूतपावन चरित्र की अनाम, अरूप सी अध्यात्म की लहर का स्वतः स्फूर्त्त प्रवाह अचानक उमड़ पड़ा था। संतों ने इसे 'सतनाम' कहातो इसकी पहचान'सतनाम' पंथ के नाम से होने लगी। जहाँ 'नाम' ही सत्य हो और सब मिथ्या। जहाँ अध्यात्म का मार्ग बक्रता से भरा हो पर संतों का हृदय-कपाट सहजभाव से सबके लिए खुला हो। भुड़कुड़ा की गुरु-शिष्य परम्परा इसी का संकेत करती है।

मध्यकालीन वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट रूप में बने मठ को संतों ने 'उलटबानी' में दुमदुमा कहा। यह लोक भावना की उपज है अथवा संतों की 'उलटबानी',कहना सरल नहीं है। पूर्वोत्तर रेलवे के जखनियाँ (गाजीपुर) स्टेशन से तीन किमी. पश्चिम दिशा में आज भीदुमदुमा ध्रुवतारा की तरह चमक बिखेरता दिख जाता है। मानो यह अध्यात्म का 'मस्तूल' हो या अलौकिक आभा का दिव्य प्रकाश। चौरासी सौ वर्ग मीटर में निर्मित यह दुमदुमा चारों दिशाओं में अध्यात्म के परकोटे से घिरा है। पूर्व दिशा में रामबन, पश्चिम में यार मोहम्मद की तपस्थली और हथियाराममठ, कुछ ही दूरी पर राम अखाड़ा स्थित भीखा चबूतरा इस दुमदुमा को ऊर्जा देते रहते हैं। श्रावण माह मेंभीखा चबूतरे पर सतुआ समारोह होता है जो जनभावना का प्रतीक है। यह खर्चीले समारोहों को चुनौती भी देता है। यहाँ सतुआ का चढ़ावा 'परसाद' बन जाता है। संतों द्वारा प्रवर्त्तित यह क्रांति अपनों को अपनेपन से जोड़ती है। इन संतों ने जन सामान्य को बाह्याडंबर रहित सत्यान्वेषण में प्रवेश कराकर मानवता की नींव डाली थी। इस 'दुमदुमा' में बने भवनों के प्रकोष्ठों में'देस-कोस' की समस्याएँ और विवाद, वाद-संवाद, से ही हल हो जाया करतेथे। दुमदुमा के दो मंजिले पर 'सत्संग भवन' बना है जिसमें अतीत-व्यतीत में पाँच सौव्यक्ति एक साथबैठकर 'पंचाइत'किया करते थे। उसके ऊपरखुले आसमान में इसकी दूनी संख्या में लोग संतों को 'पंच परमेश्वर' मान समस्याओं का समाधानकर लिया करते थे। 'मुक्त सभागार' की उपयोगिता और शोभा आज भी यथावत है। यहीं अघोर पंथीबाबा कीनाराम और भीखा साहब कीज्ञान गोष्ठी हुई थी। अनुश्रुति है कि भीखा साहब के आदेश से दीवाल ही चलने लगी। दीवाल की दरार आज भी है। इस परकोटे के अंदर, गोशाला, हाथीखाना, कोठार, भंडार, सत्संग भवन, आचार्यपीठ और दस संतों की समाधियाँ 'दुमदुमा'को श्रद्धा का केन्द्र बनाये हुए हैं।

दुमदुमा से थोड़ी ही दूर पर रामबन है। इसी रामबन में बूला दिल्ली से लौटकर 'ठहर' गये थे। वह बावरी की अध्यात्म चेतना से बिंधे बावला बनकर यहीं घूम रहे थे। उन्हें यारी साहब के 'सबद' वैरागी बनाते जा रहे थे। ऐसी

मनस्थिति में वे हल-बैल कब का भूल चुके थे। वह अनंत में अंतहीन शक्ति की तलाश कर रहे थे। यह कोई चार सौ वर्ष पूर्व की घटना है। बुलाकी राम को तो 'तारी' लग गई थी। वह दिनरात ध्यान में ही तल्लीन रहते थे। हलवाहे का काम छूट गया था। उनके काम न करने की बात मालिक गुलाल सिंह तक शिकायत के रूप में पहुँच चुकी थी। फिर क्या था 'आब' देखा न 'ताब'। ध्यानमग्न बूला की पीठ परजमींदार गुलाल सिंह ने जोर का पाद-प्रहार किया। प्रहार होते ही बूला के मुख से दही का टुकड़ा गिरा। बूला ने कहा 'अरे मालिक यह क्या? मैं तो संतों को भोजन परस रहा था'।यह घटना गुलाल को अवाक् कर गयी। बूला के चरणों में अब गुलाल का मस्तक था। बूला गुरु, गुलाल शिष्य बन गये। मालिक नौकर, नौकर मालिक बन बैठा। एक दीप के लौ से दूसरा दीप जल उठा। बावरी-बीरू व यार मुहम्मद की यह चेतना दोनों को अद्वैत बना चुकी थी। अद्भुत था वह दृश्य और अपूर्व थी वह घटना। परम्परा प्रचलित साध्वी भी यही कहती है-

यारी बारी प्रेम की, गाँछी बूलादास ।
जन गुलाल साखा भयों आदि सबद परकास ।।

फिर क्या था 'देस-कोस' में, लोगपगी भाषा में, संतों की बानियों में, जातीय स्मृतियों में एक पंक्ति सहसा उछल पड़ी- 'भगती उपजी भुड़कुड़ा'।उपजे क्यों न?भारत की जातीय चेतना में धर्म-संस्कृति और अध्यात्म का प्रवाह इसी तरह समय-समय पर उपजता रहा है। नायनारों और आलवारों के कण्ठ कोई दो हजार वर्ष पूर्व इसी तरह फूट पड़े थे। जनमानस आप्लावित हो चला था। उनके भावाकुल गायन से लोगों की हृत् तंत्री बजने लगी थी-'भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद। परगट किया कबीर ने सप्त दीप नव खंड'।। सदियों बाद यही भुड़कुड़ा में घटित हुआ। उसके महानायक थे बूला। उनके कण्ठ से बाणी फूट पड़ी- 'अधम अधीन अजाति बूला नाम सों लवलीन'। फिर तो दिनरात 'सबद' का टंकार होने लगा- 'है हममें हमहूँ ते न्यारा । हम बिनु हमरै सकलपसारा'। रामबन की(भुड़कुड़ा) यह लहर अद्भुत थी,'चिन्मय' से सजी और विस्मय से भरी थी, दंभ को विगलित कर प्रेम की धार बहाने वाली थी जिसमें राजा से रंक तक डूब गये। सामंत संत बन जाते थे और संत भगवंत। यहाँ न वेद की ऋचाओं का नाद था न तीर्थोपम कोई बहती नदी थी। यहाँ तो इड़ा-पिंगला और सुषुम्ना का मिलन था। बूला के शिष्य गुलाल यहीं मौज में ध्रुपद गाते रहते-'गुरुपरसाद साधु की संगति' । वह तो 'रज-राजस' त्याग निरहंकारी बन चुके थे- 'कहैं गुलाल सुना हो मनुआ। रजपुत भगतिन मूसर धनुआँ' ।। वह सहजतः गाते रहते थे- 'भजन कर मनवाँ बैरागी'।

भीखा, संत गुलाल के शिष्य थे। वे सतनामी परम्परा के तीसरे सिद्ध-संत थे। अनुश्रुति है कि भीखा बाल वैरागी थे। छोटी अवस्था में ही घर-बार त्याग साधुसंगति के लिए तीर्थों में भटकते फिर रहे थे। एक दिन काशी में गंगा स्नान कर सीढ़ियों पर चढ़ ही रहे थे कि कोई, गुलाल साहब का ध्रुपद गा रहा था। कहते हैं वह भुड़कुड़ा गाँव का श्रमिक था। बनारस की गल्ला मंडी में काम करता था। उस ध्रुपद से भीखा की कुंडलिनी जग गयी। नाम पता पूछ वे भुड़कुड़ा पहुँच गये। वहाँ भी वही ध्रुपद गाया जा रहा था- 'हे मन! धोवहु मन की मैली'। गुलाल का प्रत्यक्ष दर्शन और ध्रुपद की गूँजती ध्वनि अब भीखा को बावला बना चुकी थी। नतशिर हो भीखा, संत गुलाल के शिष्य बन गये। चित्त से महाचित्त का मिलन हो गया। सांसारिक संज्ञायें तिरोहित हो गईं। समरसता कीऐसी घटनायें कम ही देखने को मिलती हैं। 'कुनबी' का शिष्य क्षत्रिय और 'क्षत्रिय' का शिष्य 'ब्राह्मण'-भीखा चौबे।

यही संतों की 'मौज' है। इसी पंथ के कोई 'मौज बाबा' समीप के बाग में रहते थे। मौज में तन्मय होकर भजन गाते थे। भीखा की अध्यात्म चेतना उनसे भी जा जुड़ी थी। भीखा की वाणी स्वतः स्फूर्त होने लगी- 'रामभजन मन असकति कैसा'।उनकी कुंडलिनी जग गयी थी, मौज में उन्हें अनहद नाद सुनाई पड़ता था- 'भजन ते उत्तम नाम फकीर', 'मनुवाँ सबद सुनत सुख पावै'। फिर तो भुड़कुड़ा में संत-महंतों की बहार ही आ गई। क्रमशः बूला (१६३२-१७०९), गुलाल (१७१०-१७५९), भीखा (१७६०-१७९१), चतुर्भुजदास (१७९२-१८१८), नरसिंहदास (१८१९-१८४९), संत कुमारदास

(१८५०-१८७९), रामहितदास (१८८०-१८९२), संत जयनारायण-भोले बाला (१८९३-१९२४), रामबरनदास (१९२५-१९६९), रामाश्रयदास (१९६९-२००८), वर्तमान महंत शत्रुघ्नदास (२००८-अद्यावधि)। ग्यारहवीं गद्दी तक अनवरत चलती यह परम्परा आज भी लोककल्याण में लगी हुई है।

भुड़कुड़ा की यह अध्यात्म चेतना शीघ्र ही देश के कई भागों को आप्लावित कर गई। कोटवाँ (बाराबंकी), चितबड़ागाँव (बलिया), अहिरौली गोविन्द साहब (अम्बेडकर नगर), धानापुर (चंदौली), जनपद बस्ती, अयोध्या, बहराइच, गोण्डा होते हुए मूलधारा दिल्ली तक पहुँच गई- मिल्यौ पवन में पवन। बूला-गुलाल-भीखा की आध्यात्मिक त्रिवेणी में- पलटू, जगजीवन, दूलन, देवकीनंदन तथा निरंजनी सम्प्रदाय के संत आपाद मस्तक डूबते गये। जनश्रुतियाँ तो बहुत हैं, पर अंग्रेजविद्वान 'क्रुक' और 'बँसहर' क्षेत्र में व्याप्त अनुश्रुतियों में कोई ज्यादा अंतर नहीं दिखता है। किसी प्रसंग में गुलाल सिंह के पिता दीनासिंह को दिल्ली में कैद कर लिया गया था। उनकी मुक्ति के लिए उनके पुत्र गुलाल सिंह और परिचर बुलाकीराम दिल्ली गये हुए थे। वहीं यार मुहम्मद के 'सबदों' में बुलाकीराम खो गये।ठा. गुलाल सिंह को फकीर यार मुहम्मद ने आशीर्वाद दिया कि आपके पिता शीघ्र ही मुक्त हो जाएँगे; पर हुआ अद्भुत, पिता से पहले बूला और गुलाल ही मुक्ति पा गये। अब क्या था? यारी के शब्द बूला को मथने लगे- 'खालिक खलक, खलक में खालिक'। अद्भुत है यह प्रेम की 'लौ', एक लौ से दूसरे दीप का जल जाना, चित्त से चित्त का मिल जाना। भक्ति से अहंकार को मार देना- 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं । सब अँधियारा मिट गया दीपक रेखा माहिं'।। अध्यात्म की यह लहर भी विचित्र है- कहाँ, किसके हृदय में, कब फूट पड़े, कहना कठिन है। 'चितबड़ा गाँव' के समीपसटे गाँव के निवासी भक्ति साहित्य के आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि बावरी तो गाजीपुर (उ.प्र.) के रामानंद की शिष्या रही हैं। फिर वही परम्परा बीरू-यारी होती बूला-गुलाल के 'रामबन' तक प्रत्यावर्तित होती है। यह सचमुच-'उलटि घट देख्यौ ज्योतिपसार'जैसी है।

भजन-भाव में चित्त से महाचित्त को मिलाते, प्रियतम (ब्रह्म) की मौज में गाते-गाते यहाँ के संतों ने प्रभूत साहित्य खड़ा कर दिया। सबका समेकित रूप है- 'रामजहाज' जिसका प्रमुख राग है 'रामराग'। रामजहाज पर आरूढ़ संतों ने मुक्ति की कामना और भक्ति की साधना में नारदी भक्ति का साक्षात्कार कर लिया।इनकी वाणियों में आत्मा-परमात्मा का विरह, लौकिक प्रतिमानों द्वाराआध्यात्मिक भावों की प्रतीति कराता है। भक्ति की एकादश आसक्तियाँ (मनोदशाएँ) यहाँ के संतों की वाणियों में घुली-मिली हैं। फाग, चैता, बारहमासा, होली, चाँचरि इत्यादि शैलियों की अभिव्यक्तियाँ भक्ति का श्रेष्ठ साहित्य रचती हैं। 'रामजहाज' भुड़कुड़ा के सतनामी संतों द्वारा दिया गया नाम है। यह आध्यात्मिकता का प्रतीक है यहाँ मुक्ति की आश्वस्ति है। हंसात्मा का अनंत आकाश की ओर गमन है जहाँ न बस्ती है न शून्य है, न चंद्र न सूर्य है, न दिन न रात्रि है। वह हंस सरीखी आत्मा निर्केवल, निर्विकार और निरामय है। इस लोक तक साधक 'रामजहाज' पर सवार होकर ही पहुँचने की कामना करता है। 'रामजहाज'में भुड़कुड़ा के ही नहीं अन्य संत भी आरूढ़ होकर भगवत सामीप्य का लाभ प्राप्त कर सके हैं। बावरी, बीरू, यारी, बूला, गुलाल, भीखा (पहाड़ा छंद) संत केशव के साथ, नामदेव, सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास, मीराबाई, अग्रदास जैसे संतों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से 'रामजहाज' पर आरूढ़ हो मुक्ति का द्वार तलाश लिया है। 'गुरुग्रंथ साहब'के तर्ज पर उक्त सभी संतों की रचनाएँ'रामजहाज'में संग्रहीत हैं। संत शिरोमणि कबीर तो 'रामजहाज' से ही अमरलोक तक की यात्रा करने का साहस कर बैठते हैं- 'जहाज चढ़ो रे भाई संतो अमरलोक ले जाई',('सतनामी संतों की वाणी'- सं. उदय प्रताप सिंह, पृ. २५९)

कहना है कि भुड़कुड़ा के संतों ने भक्ति की चेतना में अहं का विलय कर 'रामराग' में गाया है। 'राम' के प्रति यह आत्यंतिक निष्ठा सभी छन्दों, रागों, सबद-साखी, रमैनी, सोरठा में दिखती है। राग कोई हो राम बिना गाया नहीं जा सकता है। रामनाम के बिना कोई छंद ही नहीं बन सकता

है। यहाँ की रामभक्ति तो कबीर की रामभक्ति से भी अधिक श्रेयस्कर दिखती है। रामरस में पगा यहाँ रामराग सबद, राम के ककहरा, रामराग सोरठा, रामराग मंगल, रामराग धनाश्री, रामराग केदार, रामराग मारू, रामराग जैतश्री- भौ अंबुधि सु नामपद नौका सूरहु लेइ चढ़ाई । रामराग सारंग, रामराग गौरी, रामराग नट, रामराग सहाना, रामराग बिहागरा, रामराग आरती, रामराग श्लोक, रामराग रमैनी, रामराग होरी, राम राग बिलावल तथा अन्यान्य रागरागनियों से लदी-भरी 'रामजहाज' संतों की मुक्ति का प्रदाता और सामान्य जन की शुभ्र चेतना का जागरण गीत है। भुड़कुड़ा का 'रामजहाज' सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, काल-समकाल के बंधन से परे है। नवें पीठाधिपति रामबरनदास के संरक्षण में 'रामजहाज' का प्रथम प्रकाशन बेलबेडियर प्रेस-प्रयागराज से सन् १९३५ ई. में हुआ था। 'रामजहाज' नामक पांडुलिपि आज भी बेठन में लिपटी मठ (दुमदुमा) में सुरक्षित है।

सोलह सौ पदों, छंदों, सबदों से भरा यह 'रामजहाज' मुक्ति का प्रदाता और समरसता का विधाता है। 'रामजहाज''बोझी'(लदी) पड़ी है, ईश्वर भजन बिना वह निश्चेष्ट हो गई है-सूरदास भगवंत भजन बिनु बोझी नाव पड़ी- (सतनामी संतों की वाणी, सं. उदय प्रताप सिंह, पृ. १४८)। रामजहाज में सर्वाधिक छंद संत गुलाल के हैं। इन्हीं के शिष्य हरलाल साहब ने चितबड़ागाँव (बलिया) में सतनामी मठ की स्थापना किया था। वहाँ का फाग गीत समरसता और रसमग्नता से भर देता है। साधनविहीन इन निर्गुणी संतों ने साहित्य और जीवनादर्श द्वारा जितना समन्वयात्मक समाज सुधार और जनपीड़ा का निवारण किया है वैसी शक्ति सम्पन्न सरकारें भी नहीं कर सकी हैं। इस अंचल में असंख्य अनपढ़ों के जीवन में अध्यात्मरस की गगरी छलकती रही है, उनका रामराग अमंद बहता रहा है। उनका जीवन निरापद और निष्पाप रहा है। निर्गुणी संतों ने जनभाषा को गढ़ा है जो सीधे परमात्मा से चिपक जाती है। भाषा का वाग्वैभव और कविता का अलंकार सामान्यजन के किस काम का? प्रगीतशील साहित्य में आम आदमी की पीड़ा का राग अलापने का फैशन बना चुके आधुनिक पढ़े-लिखे लोग क्या संतों द्वारा प्रदत्त बोधगम्यता तक पहुँच सके हैं? क्या आम आदमी उनके द्वारा प्रस्तुत साहित्य से उतना जुड़ सका है जितना संतों की अटपटी, टेढ़ी-मेढ़ी 'बानियों' से जुड़ा था? पूरा भक्ति काल इसका गवाह है।

अध्यात्म और देशभक्ति की गाथा से परिपूर्ण भुड़कुड़ा की भूमि ने संत और सिपाही दोनों को गढ़ा है। 'बँसहर' अंचल के 'देस-कोस' से जुड़ी संतों की भाषा और 'बानी' में अध्यात्म के छंद बजते हैं। एक ओर 'सद्गुरु की शब्द सेनाएँ' लड़ रही हैं तो दूसरी ओर देशभक्ति के भाव से अनुप्राणित वीर अपने जीवन का होम कर रहे हैं। संतों के प्रेमपगे छींटे जहाँ तक पहुँच सके हैं वहाँ की भूमि में दोहरी क्रांति का निनाद हुआ है। संत गुलाल के शिष्य हरलाल साहब ने अंग्रेज आततायियों से मुकाबला करते हुए अपने प्राण त्याग दिये। पर प्रेम को, समर्पण और सिर कटाने की प्रतिज्ञा को ताक पर रखकर नहीं। समूची संत परम्परा यही सिखाती है। वर्चस्व के लिए अंग्रेजों ने चौवन गाँवों के कौशिक क्षत्रियों को भयभीत करने हेतु चितबड़ागाँव मठ पर भयंकर रक्तपात(१८४३ ई.) किया था। महंत हरलाल के शरीर के दो टुकड़े हो गये थे। सर अलग और धड़ अलग। दोनों की समाधियाँ चितबड़ा गाँव में बनी हैं। स्वतंत्र भारत में क्रांति की वह चिनगारी बुझी नहीं। भुड़कुड़ा के समीपवर्ती गाँव धामूपुर में परमचक्र विजेता वीर हब्दुल हमीद, चकिया में हुतात्मा केदार सिंह और ऐमावंशी में वीरवर राम उग्रह पांडेय ने बलिदान और देशभक्ति की उस परम्परा को अक्षुण्णरखा है। आजादी की लड़ाई में चंद्रशेखर 'आजाद' इसी मठ में कई दिनों तक छिपकर क्रांतिकारी आंदोलन का संचालन किया था।

आध्यात्मिक साहित्य और देशभक्ति के राग से भरी यह भूमि वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा की स्रोत है। यहाँ एक ओर अध्यात्म की अमृतधारा छलकती है तो दूसरी ओर देश भक्ति का निनाद होता है।

***